International Journal of Applied Research 2015; 1(8): 187-189

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(8): 187-189
www.allresearchjournal.com
Received: 09-05-2015
Accepted: 12-06-2015

सन्तोष कुमार
शोधछात्र, हिन्दी विभाग,
गुरू घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, छ.ग.

डॉ. रमेश कुमार गोहे
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
गुरू घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, छ.ग.

Correspondence:
सन्तोष कुमार
शोधछात्र, हिन्दी विभाग,
गुरू घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर, छ.ग.

सामाजिक व्यवस्था में नारी का स्थान : साहित्यिक दृष्टिकोण

सन्तोष कुमार, डॉ. रमेश कुमार गोहे

स्त्री और पुरुष दोनों समाज के अभिन्न अंग हैं, जिसके बिना समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। समय–समय पर स्त्रियों की सामाजिक दशा में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। वर्तमान काल में जिस स्त्री–विमर्श के अन्तर्गत स्त्री–अस्मिता, मुक्ति, संघर्ष एवं समानता की बात की जा रही है, उसका आदर्श रुप हमें वैदिक काल में मिलता है। जहाँ पर स्त्रियों की सामाजिक दशा अत्यन्त उच्च अवस्था में थी। वैदिक कालीन ऋषियों ने जिस आदर्श समाज की स्थापना की थी उसमें स्त्री और पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को नृत्य, गायन, वादन, चित्रकला, व्याकरण, वेद आदि की शिक्षा समान रूप से दी जाती थी। पुरूषों की तरह स्त्रियाँ भी गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करती थीं। मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों की तरह स्त्रियाँ भी मंत्रदर्शी होती थी। अपाला, लोपा, मुद्रा, घोषा, सिक्ता आदि ऋषिकाओं के नाम आज भी आदर के साथ लिए जाते हैं क्योंकि ये स्त्री गरिमा की परिचायक हैं। वैदिक कालीन स्त्री के प्रति शुभत्व से प्रेरित मंत्रों में उसके कल्याण, सौभाग्य की कामना की गई है। अथर्ववेद में कहा गया है कि –

"इमा नारीरविधवा सुपत्नीराजनेन सर्पिषा संस्पृशन्ताम्
अनश्रवो अवमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयौ योनिमग्रे।
व्याकरोमि हविशाहमेतौ ब्राह्मणाव्यह कल्पयामि
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान्तसृजामि।।"[1]

अर्थात् ये स्त्रियां सुन्दर पति से युक्त रहें विधवा न हों। वह अश्रुओं से रहित और घृत से युक्त हों और संतानोत्पत्ति के लिए मनुष्य योनि में ही आवें। मैं इन दोनों को मंत्रशक्ति से सामर्थ्यवान् करता हूँ। पितरों की स्वधा को जीर्णता रहित करता हुआ, इन्हें दीर्घायु करता हूँ।
वैदिक काल में स्त्रियों को भले ही समान अधिकार प्राप्त थे लेकिन प्रथम महत्ता पुरूष को ही प्राप्त थी। इसी प्रकार उपनिषद्, स्मृतिग्रन्थ आदि में भी नारी की विभिन्न सामाजिक स्थितियों का चित्रण किया गया है। 'मनुस्मृति' में स्त्री के प्रति पूज्य भाव को प्रतिष्ठित करने वाला विश्व प्रसिद्ध श्लोक द्रष्टव्य है –

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।।"[2]

मनुस्मृति में जहाँ एक तरफ स्त्री के प्रतिष्ठित रुप की बात की गयी वहीं दूसरी तरफ उसकी स्वतंत्रता का हनन किया गया। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक नारी कहीं भी स्वतंत्र नहीं दिखती है। मनुस्मृति में कहा गया है कि –

"बाल्ये पितुर्वशे तिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्तति प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम्।।"[3]

अर्थात् स्त्री को बाल्यावस्था में पिता, युवती होने पर हाथ पकड़ने वाले पति एवं पति की मृत्यु के पश्चात् पुत्र के अधीन रहना चाहिए। उसे कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहना चाहिए।
स्त्री के प्रति रक्षिता भाव की पुष्टि करने वाला यह श्लोक कहीं न कहीं स्त्रियों की स्वतंत्रता पर एक साथ कई प्रश्न चिह्न छोड़ जाता है। क्या स्त्री को स्वतंत्रता का अधिकार नहीं है ? पराश्रित व्यक्तित्व क्या स्त्रियों के लिए अन्तिम विकल्प है ? समाज का नियंता पुरूष ही क्यों स्त्री क्यों नहीं ? रामायण काल की प्रसिद्ध नारियों में सीता, कैकेयी, तारा, मन्दोदरी, त्रिजटा, कौशल्या, स्वयंप्रभा,

शबरी, मन्थरा आदि के नाम लिये जाते हैं। इन स्त्रियों के माध्यम से तत्कालीन समाज की स्थिति को देखा जा सकता है। कैकेयी ने अपने पति दशरथ के साथ देवासुर संग्राम में भाग लिया था। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय की विशिष्ट वर्ग की स्त्रियाँ पुरूषों के प्रत्येक कार्यों में समान रूप से सहयोग देती थीं। –"स्वयंप्रभा और शबरी के उदाहरण से उस समय के आध्यात्मिक वातावरण में स्त्रियां भी आत्मिक उन्नति की दिशा में क्रियाशील थीं, यह तथ्य प्रमाणित होता हैं।"[4] लेकिन जिस रामायण काल में स्त्रियाँ पुरूषों के साथ बराबर सहयोग करती थी वहीं दूसरी तरफ वे दासी के रुप में भी दिखाई पड़ती हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण मन्थरा के रूप में मिलता हैं। वर्तमान समय में स्त्री को परित्यक्त या तलाक देने की प्रथा बड़ी तेजी से बढ़ी है। परित्यक्ता स्त्रियों का जीवन कितना कष्टमय होता है इसे सीता के संघर्षमय जीवन से समझा जा सकता है। परित्यक्ता सीता अपने दोनों पुत्रों लव और कुश के साथ जब पुनः राम के समक्ष आती हैं तो राम से स्वयं को स्वीकार करने की याचना नहीं करती है अपितु वह पृथ्वी माता से कहती हैं– हे पृथ्वी माता यदि मैं मन, वचन एवं कर्म से अपने पति राम की पूजा–अर्चना की हूँ तो मुझे अपने गर्भ में छिपा लें। बस फिर क्या था पृथ्वी माता ने अपने गर्भ में फिर स्थान दे दिया। ऐसा पौराणिक आख्यान मिलता है। निश्चित रूप से सीता ने नारी–अस्मिता के प्रति कठोर संघर्ष किया जो कि अपने अस्तित्व के लिये संघर्ष कर रही बाद की स्त्रियों के लिए एक आदर्श बन गया।

महाभारत काल में स्त्रियों की सामाजिक दशा इसके पूर्व से भी निम्न अवस्था में पहुँच गयी। स्त्रियों को अपने पितृगृह में रहकर शिक्षा आदि ग्रहण करना पड़ता था इसका प्रत्यक्ष उदाहरण द्रौपदी है जिसने अपने भाईयों साथ पितृगृह में अध्ययन किया। द्रौपदी के व्यक्तित्व में धर्मगत नीतिगत दृष्टि का प्रकाश सर्वत्र दिखाई देता है क्योंकि वह अपने सम्मान से किसी प्रकार का समझौता न करने वाली नारी के रूप में हमारे सामने आती है। द्यूतक्रीड़ा में पराजित पाण्डव द्रौपदी सहित अपना सब कुछ हार गये। दुर्योधन एवं दुःशासन ने द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया। वहीं पर द्रौपदी ने भी दृढ़ संकल्प किया कि दुःशासन के रक्त लेपन से ही मैं अपने केशों को बाँधूंगी। इस प्रकार द्रौपदी के चरित्र में एक स्त्री संकल्प की दृढ़ता का अद्भुत प्रतिमान एवं स्त्री के अस्मिताबोध का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है।

बौद्धकालीन परिवेश में स्त्रियों की सामाजिक दशा का पता जातक कथाओं के माध्यम से प्राप्त होता है। जहाँ पर स्त्री पिता या पति के आश्रय में रहती थी। समाज में जातिप्रथा की प्रधानता थी। विवाह सम्बन्ध जाति के अन्तर्गत होते थे। महात्मा गौतम बुद्ध द्वारा संघ में स्त्रियों के प्रवेश दिये जाने से परिवार में प्रताड़ित, परित्यक्त, विधवा स्त्रियाँ संघ के शरण में जाती थीं। अतः संघ द्वारा स्त्रियों को एक प्रकार का सहारा मिला, जिसके माध्यम से वे समाज में पुनः प्रतिष्ठित हुयीं।

भारत में मुसलमानों का आगमन आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हो गया था। मुस्लिम सत्ता स्थापित हो जाने से स्त्रियों की दशा निम्न से निम्नतर हो रही थी। समाज में पर्दा प्रथा पूरी तरह स्थापित हो चुकी थी एवं स्त्रियों की स्वतंत्रता पर पूरी तरह से पाबंदी लगा दी गयी थी। लेकिन इल्तुतमिश की पुत्री रजिया सुल्तान एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करती है जो वास्तव में स्त्रियों कें लिए एक प्रेरणा स्रोत है। स्त्रियों की शिक्षा हेतु सीमित साधन थे। केवल कुलीन वर्ग की स्त्रियां ही शिक्षा ग्रहण करने की अधिकारी थीं। भारतीय समाज में मुस्लिम साम्राज्य के प्रतिष्ठित होने के बाद अंग्रेजो का शासन स्थापित होता है। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दौरान स्त्रियाँ घर की सीमाओं में कैद न रहकर पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आजादी के संघर्ष में सामिल होती हैं। रानी लक्ष्मीबाई, हजरतमहल, चिन्नावा, देवी चौधरानी आदि अनेक साहसी महिलाओं ने स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया। "सन् 1917 ई. में दुर्गाबाई देशमुख, सरोजनी नायडू जैसे स्वतंत्रचेत्ता स्त्रियों ने इग्लैंड जाकर नारियों के उत्थान के लिए मताधिकार की मांग की थी। साथ ही इसमें भी दो राय नहीं है कि उस दौरान पारम्परिक बेड़िया तोड़ने में राजाराम मोहनराय, ज्योतिबाफुले, राममनोहर लोहिया आदि ने स्त्री समुदाय को भरपूर सहयोग दिया।"[5] साहित्य में भी इस स्वतंत्रता संग्राम की छाप कवियों एवं कवयित्रियों की रचनाओं में देखने को मिलती है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने स्वयं स्त्री दासता की बेड़ियो को तोडनें के लिए गांधी जी के साथ स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और अपनी लेखनी के माध्यम से रानी लक्ष्मीबाई पर 'झांसी की रानी' जैसी वीरगाथात्मक कविता लिखी। "मीरा के बाद सुभद्रा कुमारी चौहान दूसरी स्त्री हैं जिन्होंने सिद्धान्त नही गढ़े रूढ़ियो के खिलाफ नारे नहीं लगाए बल्कि पहले स्वयं को लौह श्रृंखलाओं से मुक्त किया और फिर मुक्ति की तान छेड़ी।"[6]

सुभद्रा कुमारी चौहान की प्रेरणा से ही आधुनिक काल की मीरा कही जाने वाली 'महादेवी वर्मा' ने भी स्त्री–अस्मिता पर एक सशक्त निबन्ध 'श्रृंखला की कड़िया' लिखा जिसमें गुलामी की असंख्य जंजीरो को तोड़ने एवं पुरूष की रूढ़ मानसिकता का विरोध करते हुए कहती हैं कि बड़े से बड़ा दुराचारी व्यक्ति भी परम् सती का आलोचक ही नहीं न्यायकर्ता भी होता है। इस अन्याय से स्त्री की मुक्ति जरूरी है। 'अपनी बात' नामक भूमिका में लिखती हैं कि–"हमें न किसी पर जय चाहिए न पराजय, न किसी पर प्रभुत्व चाहिए न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरूषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। परन्तु जिसके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी।"[7] अतः स्त्री की केवल एक इच्छा है–सामाजिक समानता। जिसके बल पर समाज में उनका भी अस्तित्व बना रहे। डॉ. विनय अपनी काव्य कृति 'एक पुरूष और' में मेनका के चरित्र के माध्यम से पुरूषवादी सत्ता के विरोध में आधुनिक स्त्री–बोध को प्रकट किया है –

"वह उसके हाथ में नहीं है
क्या वह विद्रोह नहीं कर सकती
उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ
जिसमें उसे जीना एक यंत्रणा से अधिक
और कुछ नहीं "[8]

आज समाज में गर्भपात, लिंग भ्रूण हत्या आदि निंदनीय कार्य बेटों की चाह में किये जा रहे हैं। बेटियों को लोग बोझ समझ रहे है। ऐसी स्थिति अंग्रेजी शासन में भी थी। मैत्रेयी पुष्पा ने अपनी आत्मकथा 'कस्तूरी कुण्डल बसै' में यह बात दिखायी है। जब कस्तूरी की माँ कस्तूरी को भला–बुरा कहने लगी तब उसी दौरान उसने कहा– "यह सतमासी तब जनमी थी, जब बेटा मरा था। सत्यानाशिनी का जन्म ही जंजाल की तरह आया। पेट में माँ ने पसेरी मार ली थी, वह फिर भी नहीं मरी। पैदा होते ही भंगिन से फेंकवाई जा रही थी कि अभागी रो पड़ी।"[9] कन्याभ्रूण हत्या के समय समाज एक बात भूल जाता है कि यह वही बेटी है जिसने माँ, बहन, पत्नी, पुत्री आदि रूपों में रहकर संसार का निर्माण एवं सहयोग किया है।

समाज में जाति प्रथा का भेदभाव पहले की अपेक्षा कम हुआ है। लेकिन कहीं न कहीं आज भी निम्न जाति की स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जा रहा है। इसका एक उदाहरण चित्रामुद्गल की लघु कहानी 'नाम' में मिलता है जहाँ पर रतिया डोम नामक स्त्री ने ठाकुर रिछपाल सिंह से कहा –"मार डारौ.....खिला दो, डर कर हम साँच के पर नहीं कतर सकते मालिक। ठाकुर के बेटे का नाम ठाकुरों जैसा न धरें तो क्या डोम, चमारों वाला धर दें ?"[10] स्त्रियां अपनी जाति के आधार पर पुत्र का नाम न रखने पर कितने ही संघर्षों को झेलती है लेकिन संघर्ष के साथ ही सत्य को भी उद्घाटित करती हैं।

वर्तमान समय में बलात्कार जैसा कुकृत्य देखने को मिल रहा है।

जिसके खिलाफ सम्पूर्ण देश की आवाजें एक साथ उठ रही हैं। और उठने के कुछ ही दिनों बाद समाप्त भी हो जा रही हैं लेकिन वास्तविक रूप से इस अग्नि में तो स्त्री ही जल रही है। आधुनिक समाज विकसित हो रहा है लेकिन उसके समाजबोध का भी विकसित होना अति आवश्यक है। चित्रामुद्गल ने अपनी और एक लघु कहानी 'जब तक विमलाएं हैं' में विमला के माध्यम से इस कुकृत्य के खिलाफ एक आवाज उठायी है। विमला की बेटी के साथ दुराचार हो जाता है लेकिन वह भी चुप रहने वाली नहीं है। वह इस कुकृत्य के खिलाफ एक नई जंग छेड़ती है– "अचानक वह ठिठकी और दृढ़ निश्चयी स्वर में बोली–छोरी को लेकर वह सीधे पुलिस स्टेशन जाएगी। साथ चलते मरद और जनानियों को सांप सूंघ गया। एक जनानी ने हिम्मत की। समझाया कि घर ले चल छोरी को डरी हुई बच्ची है। थोड़ी देर में चेत आ जाएगा। जो हुआ सो हुआ। कोतवाली में कौन लगे–सगे बैठे हुए हैं जो अन्यायी को हाथों–हाथ धर लेंगे ? टैम खराब होगा ऊपर से छोरी की दुर्गति करने से क्या फायदा ? पुलिस किसी की है जो हमारी होगी ! उसके कलेजे में पेंचकस चल रहे थे–लगातार। ऐसे नहीं छोड़ने वाली वह। हथकड़ियां लगवाएगी कुकर्मी को सजा दिलवाएगी।"[11] कथानक में निश्चित रूप से विमला ने इस कुकुत्य के खिलाफ जो संघर्ष छेड़ा वह बहुत सराहनीय है। समाज में स्त्री के प्रति हो रही ऐसी घटनाओं को रोकने के लिए स्त्री और पुरूष दोनों को एक साथ खड़े होने की आवश्यकता है। जिससे स्त्रियों की सामाजिक दशा में शीघ्रता के साथ सुधार हो सके।

वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक स्त्रियों की सामाजिक दशा में अनेक उतार–चढ़ाव आये। स्त्रियां समाज की ऐसी आवश्यकता हैं जिसके बिना समाज में आदर्श रूप स्थापित हो ही नहीं सकता। वर्तमान समय में स्त्रियों की सामाजिक दशा में पहले से कहीं अधिक सुधार हुआ है। स्त्रियों के अधिकारों हेतु महिला आयोग आदि बन चुके हैं। आज स्त्रियां पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर समाज के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी भागीदारी का दावा कर रही हैं फिर भी हमें स्त्रियों के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

सन्तोष कुमार

डॉ. रमेश कुमार गोहे

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अथर्ववेद, द्वादश काण्ड, द्वितीय अनुवाक, सूक्त दो, मंत्र 31–32
2. मनुस्मृति, श्लोक– 56
3. वही, श्लोक– 151
4. डॉ. चन्द्रशेखर त्रिपाठी, स्त्री विमर्श, साहित्य और समाज की संरचना में, प्र.सं.–2013, पृ.– 04
5. चंद्रकांता, स्त्री विमर्श और हिन्दी, आजकल, मार्च–2008, पृ.– 25
6. शशिकलाराय, इस्पात में ढलती स्त्री, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृ.– 25
7. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़ियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, च.स.– 2004, 'अपनी बात' भूमिका से
8. डॉ. विनय, एक पुरूष और, पृ.– 64
9. मैत्रेयी पुष्पा, 'कस्तूरी कुण्डल बसै', प्र.सं.–2009, पृ.– 13
10. चित्रामुद्गल, 'लपटें' (नाम), 2002, पृ.– 107
11. चित्रामुद्गल, 'लपटें' (जब तक विमलाएं हैं), प्र.सं.–2002, पृ.– 101